शब्दों के माध्यम से अशब्द तक

शिव ओम अम्बर

शब्दों के माध्यम से अशब्द तक

शिव ओम अम्बर

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

कोलकाता

प्रकाशक :
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय
१ सी, मदनमोहन बर्मन स्ट्रीट
कोलकाता-७०० ००७
टेलीफैक्स : २३८ ८२१५
ई-मेल : kumarsabha@vsnl.net

■

जन्माष्टमी, सम्वत् २०५९
३१ अगस्त २००२ ई.
११०० प्रतियाँ

■

मूल्य : **६० रुपये**

■

आवरण सज्जा :
श्रीजीव अधिकारी

■

मुद्रक :
एस्केज
८, शोभाराम वैशाख स्ट्रीट
कोलकाता-७०० ००७
दूरभाष : २१८ ८०६४

Shabdon Ke Madhyam Se Ashabda Tak
(Compilation of Hindi Poems)
by : **SHIV OM AMBAR**
Price : Rs. 60/-

समर्पण

पूज्या ईजा (माँ) की
शुभाशीषमयी स्मृति
को

मुझको लगती चोट तड़प उठती थी वो,
मेरी सिसकी उसको बहुत रुलाती थी।

अक्सर निर्जल एकादशियाँ जीती माँ,
मेरी चिन्ता में जलती सँझवाती थी।

उसके चरणों में थी मेरी गंगोत्री,
उनको छूता था कालिख धुल जाती थी।।

—शिव ओम अम्बर

अध्यात्म को कविता का अर्घ्य

कविवर शिव ओम अम्बर की नई कविता पुस्तक "शब्दों के माध्यम से अशब्द तक" की कविताओं में आध्यात्मिक चिन्तन और अनुभवों की काव्यात्मक अभिव्यंजना है। उपनिषद्, गीता, श्रीमद्भागवत, रामचरितमानस आदि के अनुशीलन से बनी श्रद्धामयी दृष्टि के आधार पर रचित प्रभादीप्त ३३ लघु गीतों और २२ त्रिपदियों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। यह वही दृष्टि है जो सबमें अपने को और अपने में सबको देख पाती है। इसीलिए कवि सबकी पीड़ा को अपनी पीड़ा मानता है और उसका विश्वास है कि पीड़ा के माध्यम से ही परमतत्त्व तक पहुँचा जा सकता है। इसी विश्वास के कारण कभी कवि को लगता है कि *'वेदना ब्रह्म की अभिव्यंजना विधा है'* तो कभी उसे लगता है कि *'कविता पीड़ा की पावन पर्ण कुटी है'*। कवि के अनुसार परम तत्त्व का साक्षात्कार वही कर सकता है जो स्वर्णथाल से ढके सत्य के वस्तुतत्त्व को समझने के लिए स्वयं नख से शिख तक प्रज्ज्वलित प्रश्न ही बन जाता है। तभी उसे इस सत्य का अनुभव होता है कि *'मिथ्या घोषित सृष्टि स्वयं स्रष्टा का श्री विग्रह है'* और तभी वह समझ पाता है कि-

क्षर अक्षर का द्वन्द्व सिर्फ शब्दों का सम्मोहन है।
वही विराट वही वामन जो मुक्ति वही बन्धन है

बिना अपने लघु अहं की आहुति दिये इस विराट सत्य की उपलब्धि किसी कवि को नहीं हो सकती। गीता की प्रतिध्वनि सी है इन पंक्तियों में,

है कवि खुद में याज्ञिक वेदी होता हवि
कविता आक्षितिज व्याप्त साकल्य सुरभि है।

अर्थात् जब कवि अपने सीमित अहं को तोड़कर स्वयं यज्ञ की वेदी, स्वयं होता एवं स्वयं हवि बन जाता है तभी उसकी कविता हवन किये गये साकल्य की सुरभि के समान सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाती है। इस उपलब्धि की सबसे बड़ी बाधा है क्षुद्र अहंकार, नाम और रूप में बँधा मैं-पन।

कवि के अनुसार छोटे अहं में बद्ध व्यक्तियों की नियति यातनाभोग ही है, उसकी मार्मिक उक्ति है,

हम अहं के तिमिर में बैठे हैं,
पींजरे में हैं पंचतत्त्वों के,
यातना के शिविर में बैठे हैं।

इसी अज्ञान के अंधकार में भटकता हुआ दांभिक जुगनू कभी-कभी अपने को सूरज मान बैठने की हिमाकत करता है। कवि का आग्रह है कि श्रद्धा का सम्बल लेकर एवं अहंकार का त्याग कर ही कोऽहम् से सोऽहम् तक की यात्रा की जा सकती है। अतः उसने बार-बार कहा है, *'अहंकार त्यागो उड़ान का महाशून्य के यात्री'*। अहंकार त्याग कर सबका भला चाहने की प्रेरणा कवि को सूफी साधना से भी मिली है। अपनी एक त्रिपदी में उसने कहा है :

नेस्तनाबूद ये अना कर दे
खैरियत सबकी चाहूँ ऐ मौला!
मुझको दरवेश की दुआ कर दे।

जब तक अना या क्षुद्र अहं रहेगा तब तक व्यक्ति को अपनी विराट सत्ता का अनुभव नहीं हो सकता, तब तक वह 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ही भूमा के स्तर पर ब्रह्म हूँ) का उद्घोष अनुभव के स्तर पर नहीं कर सकता। अतः कवि का विश्वास है कि *'अग्निशुद्ध हो अहंकार ही ओंकार बनता है।'* साधना की अग्नि में नामरूप के अहंकार की क्षुद्रता को जलाकर शुद्ध व्यापक अहं ही ओंकार..... ब्रह्म बन जाता है। कवि की यह यात्रा ज्ञानमयी भक्ति की यात्रा है। अहंकार प्रेरित कर्म उसे यदि कारागार की लौह प्राचीर जैसा लगता है तो ज्ञान भी उसे भक्ति की साधना की ओर ही प्रेरित करता है। उसकी मान्यता है *'चरमशिखर पर ज्ञान भक्ति का सिंह-द्वार बनता है।'* अहंकार प्रेरित कर्मों की सीमा को निर्दिष्ट करते हुए कवि ने कहा है कि *'हर उड़ान आकाश नापने की असफल गाथा है।'* अतः विनम्र होकर ही प्रभु को प्राप्त करने की यात्रा करने में आगे बढ़ा जा सकता है। कवि के शब्दों में, *'मन्दिर में प्रवेश की पहली शर्त झुका माथा है'*।

वह चरम उपलब्धि प्रयत्नसाध्य नहीं कृपासाध्य है इसीलिए कवि कहता है,

उसे प्रयत्नों से पाने का चिन्तन मतिभ्रम है,
वह प्रसाद है, साधुवाद है, आशीषों का क्रम है।

उसकी कृपा से ही यह बात समझ में आती है कि,

'आत्मतत्त्व है नटवर नागर अन्तरतम वृन्दावन'। अतः हर साधक को सचेत करते हुए कवि कहता है, *'श्रद्धा का पाथेय सँभाले रखना अन्तर्यात्री'*। यह श्रद्धा भी निष्कल्मष होनी चाहिये, निष्काम होनी चाहिये क्योंकि–

निष्कल्मष अन्तस् की अव्याहत श्रद्धा वसुधा तल पै विभु को उतार सकती है।

श्रद्धा और प्रीति के योग का नाम ही भक्ति है। कवि ने जितनी महिमा श्रद्धा की गाई है उतनी ही महिमा प्रीति की भी गाई है। उसने एक त्रिपदी में कहा है,

इक निर्बन्ध व्यवस्था है
जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति नहीं,
प्रीति तुरीयावस्था है।

यह भक्तिमयी दृष्टि प्राप्त कर लेने पर कवि को सर्वत्र अपने प्रिय का ही दर्शन होता है और वह कह उठता है, *'प्रभु कहीं शून्य में नहीं सृष्टि में ही है'*। तब उसे अंधकार और प्रकाश, सुख और दु:ख दोनों में प्रभु की सत्ता का अनुभव होता है। और वह दोनों को ही सहज स्वीकार करता है। कवि की एक मार्मिक त्रिपदी है,

तम तुम्हारा, ज्योति के निर्झर तुम्हारे हैं,
चूमता हूँ मैं सुखों को भी दुखों को भी,
जानता हूँ दोनों हस्ताक्षर तुम्हारे हैं।

दु:खों में अविचलित रहने की प्रेरणा प्राप्त करने के लिए कवि ने श्री राम परिवार का मर्मस्पर्शी अंकन किया है। कवि के अनुसार,

गाथा राघव की विमल व्योम गंगा है।
लक्ष्मण है बाणों बिधा एक वक्षस्थल,
जिसकी प्रत्येक श्वास याज्ञिक समिधा है।
तप के ज्वलंत विग्रह का नाम भरत है,
शत्रुघ्न मूक अर्चा की ज्योतिशिखा है।
है राम मुस्कराता आचमन ज़हर का,
सीता पीड़ा को प्राप्त हुई संज्ञा है।

यह सम्पूर्ण कविता श्री राम परिवार द्वारा प्रस्तुत आदर्श के अनुरूप हम सबको कठिन से कठिन आघात झेलकर भी कर्त्तव्य पथ पर अविचलित रूप से अग्रसर होते रहने का संदेश देती है।

एक और बड़ी बात की ओर कवि ने काव्यात्मक इंगित किया है। गीता में कहा गया है 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:' अर्थात् अपने कर्म से ही प्रभु की पूजा कर मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है। स्पष्ट है व्यक्तियों के कर्म, व्यक्तियों के स्वभाव अलग-अलग हैं अत: उनकी अर्चना की पद्धति भी अलग-अलग होती है। कवि मानता है कि सब अपने-अपने पथ पर श्रद्धा के साथ चलते रहें तो वे प्रभु तक पहुँच जायेंगे। अब कवि का कर्म तो कविता लिखना है अत: वह निस्संकोच रूप से घोषणा करता है :

मेरे बिखराव में भी इक सलीका है–
ग़ज़ल कहता हूँ मैं सजदे नहीं करता
इबादत का मेरा अपना तरीका है।

निश्चय ही कवि को अपने ढंग से इबादत करने का, अर्चना करने का अधिकार है । काव्य सृजन ही उसकी अर्चना है। लेकिन इस क्षेत्र में और गहरे उतरने पर कवि को यह भी लगता है कि शब्दों के माध्यम से सत्य को व्यक्त करने की उसकी सम्पूर्ण चेष्टा असफल रही है। अत: उसका निष्कर्ष है,

सत्य के सौध तक पहुँचने को, शब्द का अतिक्रमण जरूरी है।

जो सर्वथा निर्बन्ध है वह शब्दों में कैसे बँध सकता है! उसके सम्बन्ध में सारे वाद-विवाद सारे तर्क अंततोगत्वा अर्थविहीन से लगते हैं। अपनी इस अनुभूति को प्रमाणित करने के लिये उसने सूर की दिव्य दृष्टि का सहारा लेकर कहा है,

जिस घड़ी तर्क की दृष्टि सूर बनती है
उस घड़ी सत्य का श्याम नजर आता है

इसीलिये उसका आवाहन है, *शब्दों के माध्यम से अशब्द तक आओ ।*

आज के इस भौतिकतावादी युग में ये कविताएँ कुछ लोगों को असमय की रागिनी लग सकती हैं किन्तु मुझे लगता है कि मानव चेतना आज की भौतिकता के उत्कट विष से पीड़ित होकर पुनः अध्यात्म के अमृत का आस्वादन करना चाहती है।

भौतिकतावाद से ग्रस्त संकीर्ण मानव चेतना जिस प्रकार दूसरों का अनिष्ट कर भी स्वयं को सुखी बनाने की मृग-मरीचिका में व्यक्ति को भटकाती है, उससे किसी का कल्याण नहीं हो सकता है। यह प्रेरणा अध्यात्म ही दे सकता है कि दूसरों का अनिष्ट करना भी अपना ही अनिष्ट करना है। सबके सुख में ही अपना सुख है। इसी संकलन की मार्मिक पंक्तियाँ हैं,

क्या किसी पल विचार करते हैं?
वार चाहे किसी पै करते हों,
हम स्वयम् पर प्रहार करते हैं।

मतों, मजहबों के विवाद में अध्यात्म ही सही संकेत देते हुए कह सकता है कि *'हर पंथ अन्ततः वहीं पहुँच जाता है।'*

अतः मैं इन कविताओं को आज के युग के लिए बहुत समीचीन मानता हूँ। निश्चय ही ये कविताएँ हिन्दी साहित्य को समृद्ध करेंगी। मैं इनकी रचना के लिये शिव ओम अम्बर को बधाई देता हूँ। प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि उसके अन्तस् में सोया हुआ कालिदास जग कर उसकी वाणी में उतर आये।

राज भवन
लखनऊ-२२७ १३२

(विष्णुकान्त शास्त्री)
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे

श्रीरामचरितमानस के स्वाध्याय का संस्कार मुझे अपनी माँ से प्राप्त हुआ, श्रीमद्भागवत के प्रति अभिरुचि मेरे बचपन को पिताजी के साथ उनकी भागवद् कथाओं के प्रवचनों में जाकर उपलब्ध हुई और श्रीमद्भगवद्गीता के लिये मेरी आस्थामयी उत्कंठा बुआजी ने जगाई। मेरी ईजा (माँ) की समस्त आस्थाओं का केन्द्र 'मानस' रहा। वही उनका धर्मशास्त्र था, वही उनका शकुन-शास्त्र, आजीवन वे 'मानस' से संयुक्त रहीं। बाबू (पिताजी) के साथ अपने बचपन में कुछ गाँवों में जाने की मुझे स्मृति है। वह भागवत सुनाने जाते थे और कथा में चढ़ने वाले ऋतुफलों का बहुत बड़ा भाग गाँव के बच्चों को प्रसाद रूप में दे आते थे। उन्होंने ही मुझे बताया था कि ज्वालादेवी हमारी कुलदेवी हैं और श्री दुर्गा सप्तशती से पूर्व पठनीय कुञ्जिकास्तोत्र कंठस्थ करा दिया था। हर प्रातः वही मेरा पूजा-मन्त्र रहा। मेरी बुआजी बाल-वैधव्य का दंश लिये पहाड़ से मेरे पिताजी के पास फ़र्रुख़ाबाद आ गईं और फिर जीवन भर हमारे साथ रहीं। उन्होंने बापू के आह्वान पर स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिया, तिरंगा फहराते हुए जेल गईं और तत्कालीन नारी-वर्ग का अपने परिक्षेत्र में नेतृत्व किया। श्रीमद्भगवद्गीता एक स्वच्छ वस्त्र में लिपटी उनके सिरहाने रहती थी। उनके प्रति गहन श्रद्धा तथा प्रेम ने गीता के प्रति भी मेरे कैशोर्य को श्रद्धा तथा उत्कंठा से आपूरित कर दिया।

काल-प्रवाह में एक-एक करके मेरे वटवृक्ष जैसे स्वजन मुझसे दूर होते चले गये किन्तु उनकी आस्था के केन्द्र ये ग्रन्थ मेरे अति आत्मीय बनकर शक्ति और सम्बल देते हुए मेरी चेतना के अविच्छिन्न अंग बनकर सदा मेरे साथ रहे। सौभाग्य से मेरी अध्ययनशील प्रवृत्ति ने "मानस" को हृदयंगम करने के लिये मुझे पूज्य पंडित रामकिंकर उपाध्याय जी की वाणी का आश्रय प्रदान कर दिया तो भागवत का तात्पर्य समझने के लिये स्वामी अखण्डानन्दजी के प्रवचनों का संग्रह दे दिया। गुरुवर श्रद्धेय विष्णुकान्त जी शास्त्री के "ईशावास्य-अनुवचन" के पुनः पुनः पाठ से मुझे उपनिषदों के पारायण की प्रेरणा मिली। और इन सबके साथ ओशो की अमृत-वाणी ने हर युग के सम्बुद्ध पुरुषों के शाश्वत वचनों के सार-तत्व को स्पष्ट करते हुए परिधि पर जीवन की विविधताओं को जीते हुए धीरे-धीरे केन्द्र से संयुक्त होने की चेष्टा करने का उद्बोधन दिया।

कविता अनजाने ही मेरे जीवन में प्रविष्ट हुई और धीरे-धीरे मुझे आविष्ट करते हुए मेरे जीवन की अधिष्ठात्री बन गई। कवि-सम्मेलन के मंच पर मुझे संचालक के रूप

में मान्यता प्राप्त हुई तो साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी ग़ज़ल के हस्ताक्षर के रूप में मेरी संज्ञा को स्वीकृति दी। किन्तु इस जीवन के समानान्तर मेरे भीतर उपस्थित अन्तर्पथ का यात्री इन गीतों की रचना करता जा रहा था। इन्हें मंच पर नहीं सुनाया, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित नहीं कराया, केवल कुछ बहुत भावपूर्ण साहित्यिक बन्धुओं के बीच प्रायः अपने आवास पर ही इनका पाठ किया। हाँ, अकेले में अवश्य इन्हें गुनगुनाता था। मंच पर मेरे पुरस्कर्ता कविवर विश्वनाथ द्विवेदी ने जब ऐकान्तिक गोष्ठी में इन्हें सुनकर मुझे हृदय से लगा लिया और अभिन्न बन्धु डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी के माध्यम से इनकी कुछ पंक्तियों को सुनकर गुरुवर आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री ने मुझे आशीर्वचनों से अभिषिक्त कर दिया – मुझे कृतार्थता की अनुभूति हुई।

वर्षों पूर्व एक बार श्रद्धेय आत्मदा (कविवर आत्मप्रकाश शुक्ल) ने अलीगंज में अपने निवास "वाणी-विहार" में ले जाकर मुझे कविवर कन्हैयालाल सेठिया की गीति-कृतियों "अनाम" और "प्रणाम" से कुछ पंक्तियाँ सुनाई थीं। उन्हें सुनकर मेरे हृदय से पुकार उठी थी – हे प्रभु! क्या कभी मैं भी अध्यात्म को गीतों में गुनगुना सकूँगा? इन गीतों के रूपाकार प्राप्त करने की आकांक्षा का बीज शायद तभी चेतना की किसी गहन परत में आरोपित हो गया था, समय पाकर वह अंकुरित हुआ। कविवर दिनकर का शुभाशीष जब मुझे अपनी काव्य-यात्रा के प्राथमिक चरण में मिला, मैं अग्निधर्मा रचनाएँ लिख रहा था और वह स्वयं 'हारे को हरिनाम' की पंक्तियाँ सुना रहे थे। दिनकर जी के साहित्य में सर्वाधिक अवगाहन करने पर धीरे-धीरे मुझे उनकी यह अन्तिम कृति सर्वाधिक प्रभावी लगने लगी और मैं अक्सर 'हारे को हरिनाम' की कविताएँ एकान्त में बाँचने लगा। निश्चित रूप से मेरे अवचेतन को इस कृति ने भी पर्याप्त अनुप्राणित किया।

मेरी हार्दिक आकांक्षा थी कि मेरी इस कृति की प्रस्तुति आदरणीय प्रेमशंकर जी त्रिपाठी के द्वारा हो और इसकी भूमिका गुरुवर शास्त्री जी लिखें। कोलकाता में जब एक बार श्रद्धेय शास्त्री जी ने मुझे कहा कि तुम्हारे ग़ज़ल-संग्रह के बाद तुम्हारी इन रचनाओं की भी पुस्तक निकलनी चाहिये तब मेरे मुँह से निकल पड़ा कि इसकी भूमिका आपको ही लिखनी पड़ेगी। वह वात्सल्यमयी दृष्टि के साथ मुझे देखते हुए मुस्करा दिये। आगे चलकर जब भी कहीं भेंट हुई, उन्होंने पूछा – 'तुम्हारी पाण्डुलिपि तैयार हुई?' और जब मैं पाण्डुलिपि तैयार कर पाया, वह उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल के रूप में बेहद व्यस्त जीवन जी रहे थे। बड़े ही संकोच के साथ मैंने पाण्डुलिपि राजभवन भेजी। और एक दिन मुझे आश्चर्यमिश्रित श्रद्धा से अभिभूत करते हुए श्रद्धेय गुरुवर की वाणी दूरभाष पर सुनाई दी– 'प्रिय अम्बर, अभी-अभी तुम्हारी कृति की भूमिका लिखी है। तुमने अपने पत्र में कृति के नामकरण का उत्तरदायित्व भी मुझे सौंपा था, मुझे यह नाम अच्छा लगा– 'शब्दों के माध्यम से अशब्द तक'। '

गुरुवर की भूमिका के साथ पाण्डुलिपि को आदरणीय डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी के पास भेजकर जैसे मेरे कर्तव्य की इतिश्री हो गई। अब मेरी सारी चिन्ताएँ उनकी थीं। कुछ दिन पूर्व अचानक कोलकाता से दूरभाष पर उन्होंने आदरणीय श्री जुगलकिशोर जैथलिया जी से वार्ता कराते हुए मुझे सूचना दी कि कुमारसभा की तरफ से पुस्तक प्रकाशन का कार्य प्रारंभ हो रहा है, मुखपृष्ठ के सन्दर्भ में एक कलाकार से बात हो रही है। अपने इन अनन्यानुरागी हितैषी बन्धुओं के प्रति कृतज्ञता के भाव से भरे हुए मुझे इस समय कोलकाता के सर्वश्री विमल लाठ, महावीर बजाज, कृष्णस्वरूप दीक्षित तथा बड़ाबाजार कुमारसभा के उन समस्त साहित्य-संरक्षक बन्धुओं के प्रति भी आभार प्रकट करने की भावाकुल आकांक्षा का अनुभव हो रहा है जिन्होंने सदैव मेरी अकिंचनता को अपने औदार्य से मान-मण्डित किया।

मेरी सहधर्मिणी अलका, जिसने अपनी संज्ञा मेरे अभिधान में सहज समाहित कर दी है, की हार्दिक इच्छा थी कि मेरे जीवन के इस पचासवें वर्ष में मेरी वैखानसी वृत्ति, मेरे वानप्रस्थ की उद्घोषणा-सी यह कृति प्रकाशित हो जाये। उसे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है, इसे प्रकाशनोन्मुख पाकर। हमारे वैवाहिक जीवन के भी पच्चीस वर्ष पूरे हो रहे हैं। इस अवसर पर उसे देने के लिये मेरे पास यही सबसे बड़ा उपहार है।

इस कृति के अधिकांश भाग को जिन सहृदय बन्धुओं ने बड़े ही भाव के साथ मेरे पास बैठकर सुना उनमें (उपरिलिखित के अतिरिक्त) प्रमुख हैं — सर्वश्री आलोक गौड़, (श्रीमती) मधु गौड़, ब्रजकिशोर सिंह किशोर तथा कविवर सोम ठाकुर एवम् ओशो की वृहद् जीवनी के यशस्वी लेखक स्वामी ज्ञानभेद जी।

अब, शब्द के इस संकीर्तन-शिविर में सम्मिलित होने के लिये आप सादर आमन्त्रित हैं।

(शिव ओम अम्बर)

४/१०, नुनहाई स्ट्रीट
फ़र्रुख़ाबाद-२०९ ६२५
(उ. प्र.)

प्रस्तुति के वचन

आधुनिक हिन्दी कविता में ओजस्वी एवं तेजस्वी रचनाकार के रूप में शिव ओम अम्बर ने पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। ग़ज़ल के समकालीन हस्ताक्षरों में उनकी गणना प्रथम श्रेणी के ग़ज़लकार के रूप में की जाती है। सामान्य सी कद-काठी एवं सीधे-सादे रहन-सहन वाले अम्बर का वाह्य-व्यक्तित्व भले ही अतिसाधारण प्रतीत होता हो परन्तु उनकी रचनाओं की प्रखरता एवं प्रभविष्णुता ने उन्हें असाधारण कवि की प्रसिद्धि प्रदान की है। कवि सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में वे लोकप्रिय कवि के रूप में समादृत हैं। मंच-संचालन के क्षेत्र में भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है।

भगवान श्रीराम पर अंबर की अदम्य निष्ठा भारत की अस्मिता से जुड़ी हुई है :

बिना राम के आदर्शों का चरमोत्कर्ष कहाँ है ?
बिना राम के इस भारत में भारतवर्ष कहाँ है ?

कवि के आस्तिक मन का प्रभु के प्रति भावोद्‌गार ध्यातव्य है :

प्रभु परात्पर प्रकाम हैं श्रीराम, गति-प्रगति-यति-विराम हैं श्रीराम।
चिन्तना को अतल-असीम-अगम, प्रार्थना को प्रणाम हैं श्रीराम।।

भारतभूमि के प्रति अंबर का अनुराग उसे प्रखर राष्ट्रवादी रचनाकार की प्रतिष्ठा प्रदान करता है। भारत देश में रहते हुए भी जो लोग इसके प्रति सम्मान एवं समर्पण-भाव नहीं रखते, कवि उन्हें कड़ी फटकार लगाने से नहीं चूकता :

इससे बढ़कर कोई पाठशाला नहीं, इससे ऊँचा कोई भी शिवाला नहीं।
इसमें रहना है तो इसके होकर रहो, देश है यह, कोई धर्मशाला नहीं।

समसामयिक प्रसंगों पर विशेष अंदाज़ और प्रभावी तेवर वाली उनकी रचनाएँ अपनी सहजता और साफ़गोई के कारण पाठक पर प्रभाव छोड़ती हैं। साहित्यकारोचित स्वाभिमान कवि की ख़ासियत है :

फ़ाक़ों को भी मस्ती में जीते हैं, बस्ती-बस्ती फ़रियाद नहीं करते।
सच कहते हैं अथवा चुप रहते हैं, हम लफ़्ज़ों को बरबाद नहीं करते।।

कवि का शिव-संकल्प है :

या बदचलन हवाओं का रुख मोड़ देंगे हम,
या ख़ुद को वाणी-पुत्र कहना छोड़ देंगे हम।
जिस दिन भी हिचकिचायेंगे लिखने में हक़ीकत
काग़ज को फाड़ देंगे कलम तोड़ देंगे हम।।

पीड़ा और वेदना के बावजूद गुनगुनाते रहने की कला ही अक्षरों की ज़िन्दगी जीनेवाले कवि को सिद्धि प्रदान करती है, उसका मंतव्य है :

जन्म से जीती रही है निर्जला एकादशी
वेदना क्षीरोज्ज्वला है अक्षरों की ज़िंदगी।
एक जलते नीड़ में, ले पंख ज़ख़्मों से भरे,
गुनगुनाने की कला है अक्षरों की ज़िंदगी।।

शिव ओम अंबर की कविताओं में संस्कृतनिष्ठ और सहज भाषा का सुन्दर समावेश तो है ही, हिन्दी और उर्दू की रवानगी का अद्‌भुत तालमेल भी है। कवि के स्वाभिमान को द्योतित करती है यह त्रिपदी—

हर पुरस्कार पा लिया होता।
वक़्त के बादशाह के आगे—
गर ज़रा सर झुका लिया होता।

शिव ओम अंबर केवल सामयिक संदर्भों के कुशल चितेरे ही नहीं हैं, आध्यात्मिक गांभीर्य से रची-पगी कविताओं के रचनाकार भी हैं— इस बात की जानकारी बहुत कम लोगों को है। पुराण, उपनिषद्, श्रीमद्‌भागवत तथा रामचरितमानस जैसे ग्रंथों से अर्जित संस्कारों एवं विचारों से समन्वित रचनाएँ भी उनके काव्य-संभार में हैं। ये रचनाएँ कविसम्मेलनों के मंच से प्रस्तुत न किए जाने के कारण अचर्चित ही रही हैं। इन गंभीर, तलस्पर्शी, आध्यात्मिक ऊर्जा सम्पन्न कविताओं को प्रकाशित करने का दायित्व ग्रहण कर कुमारसभा पुस्तकालय गौरवान्वित है। कृति के आरंभिक अंश में ये रचनाएँ संग्रहीत की गई हैं। इन रचनाओं की महत्ता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि काव्य-मर्मज्ञ आलोचक तथा भारतीय संस्कृति, धर्म एवं अध्यात्म के अधिकारी विद्वान आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री ने कृति की भूमिका लिख कर इन रचनाओं को अपने आशीर्वाद से अभिषिक्त किया है।

कृति के अंत में 'कुछ लोकप्रिय कविताएँ' शीर्षकान्तर्गत कवि की उन चर्चित कविताओं का समावेश किया गया है जिन्होंने अंबर को गीत-ग़ज़लकार की प्रतिष्ठा प्रदान की है। एक ही कृति में इस विशिष्ट रचनाकार की बहुरंगी रचनाओं का आस्वाद पाठक कर सकें इस हेतु हमने विनम्र प्रयास किया है।

हमें विश्वास है कि पुस्तकालय के अन्य प्रकाशनों की भाँति इस कृति का भी साहित्यानुरागी बंधु स्वागत करेंगे।

प्रेमशङ्कर त्रिपाठी.

(प्रेमशंकर त्रिपाठी)
उपाध्यक्ष
श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

रीडर एवं अध्यक्ष : हिन्दी विभाग
सुरेन्द्रनाथ सान्ध्य कॉलेज
कोलकाता-७०० ००९

अनुक्रम

	गीत	पृष्ठ
१.	दर्पन नहीं दृष्टि को बाँचो, दृष्टि सृष्टि का अथ है	१
२.	सृष्टि लास्य है जगदम्बा का, प्रलय रुद्र का नर्तन	२
३.	अहंकार त्यागो उड़ान का महाशून्य के यात्री	३
४.	स्वर्णथाल से ढँके सत्य का वस्तुतत्त्व कैसा है ?	४
५.	हर कोलाहल अन्ततः शान्त होता है	५
६.	गाथा राघव की विमल व्योमगङ्गा है	६
७.	क्रन्दन ही विनयपत्रिका बन जाता है	७
८.	पश्चात्तापी दृग्धारा सुरसरिता है	८
९.	कविता पीड़ा की पावन पर्णकुटी है	९
१०.	वेदना ब्रह्म की अभिव्यञ्जना-विधा है	१०
११.	रश्मियाँ असंख्य सही, है ज्योति अकेली	११
१२.	हर मानस में नैमिषारण्य रहता है	१२
१३.	हर प्रणत अहम् उद्गीथ बना करता है	१३
१४.	सौन्दर्य दृश्य में नहीं दृष्टि में ही है	१४
१५.	पीड़ा ही अन्तःसलिला सरस्वती है	१५

	गीत	पृष्ठ
१६.	हर पंथ अन्ततः वहीं पहुँच जाता है	१६
१७.	वेदना वाग्देवी भी कहलाती है	१७
१८.	हर यात्रा गंगासागर की यात्रा है	१८
१९.	करुणा ही वत्सल क्षीरोज्ज्वल गंगा है	१९
२०.	हर जीवन कुरुक्षेत्र की रणस्थली है	२०
२१.	सत् पद्मनाभ चेतना स्वयं पद्मा है	२१
२२.	नर तत्सम नारायण का ही तद्भव है	२२
२३.	हर जीवन अभिनव नाट्यग्रंथ होता है	२३
२४.	ग्रंथों की गर्द छानते उम्र बिताई	२४
२५.	उसके जलवे तो कदम-कदम बिखरे हैं	२५
२६.	शब्दों के माध्यम से अशब्द तक आओ	२६
२७.	जीवन के कश्यप की परिणीताओं में कद्रू कल्मषता विनता निश्छलता है	२७
२८.	दृष्टि बिम्ब की अपने प्रतिबिम्बों में उलझ गई है	२८
२९.	हर आह अन्ततः एक राह बनती है	२९
३०.	कोऽहम् की यात्रा सोऽहम् तक आती है	३०
३१.	श्रद्धा का पाथेय सम्हाले रखना अन्तर्यात्री!	३१
३२.	ध्यानस्थ शान्त प्रार्थनाप्रणत तन्मय है	३२
३३.	माँ है तो सारा घर ठाकुरद्वारा है	३३
●	**कुछ लघु कविताएँ**	३७–४७
●	**कुछ लोकप्रिय रचनाएँ**	५१–६४

गीत-१

दर्पन नहीं दृष्टि को बाँचो
दृष्टि—
सृष्टि का अथ है।

नग्न सत्य की चट्टानों की
पथरीली छाती से
टकराकर जिस वक्त
अहम् का वेग रुद्ध होता है,

तोड़ कर्म के कारागृह की
सुदृढ़ लौह-प्राचीरें
क्षुब्धचित्त सिद्धार्थ
शान्त-निष्काम
बुद्ध होता है।

नहीं समष्टि व्यष्टि को बाँचो
व्यष्टि
अगाध-अकथ है। ●

गीत-२

सृष्टि–
लास्य है जगदम्बा का
प्रलय–
रुद्र का नर्तन।

जन्म–
पंचधाराओं के
संगम की
दन्तकथा है।
महा काल के
यज्ञकुण्ड में
हर संज्ञा
समिधा है।

आत्मतत्व है–
नटवर नागर
अन्तरतम–
वृन्दावन। ●

गीत-३

अहंकार त्यागो उड़ान का
महाशून्य के यात्री!

हर उड़ान
आकाश नापने की
असफल गाथा है,
मन्दिर में
प्रवेश की पहली शर्त
झुका माथा है।

उसे प्रयत्नों से
पाने का
चिन्तन
मति-विभ्रम है,
वह प्रसाद है
साधुवाद है
आशीषों का क्रम है।

सकल सृष्टि पर है
उसकी
वत्सला दृष्टि वरदात्री। ●

गीत-४

स्वर्णथाल से ढँके सत्य का
वस्तुतत्त्व कैसा है?

इसी अनादि प्रश्न के उत्तर में
सारा दर्शन है,
चिन्तन मनन निदिध्यासन
इसका ही विश्लेषण है।

किन्तु समय साक्षी है
उत्तर वही खोज पाता है,
जो नख से शिख तक
प्रज्ज्वलित प्रश्न ही बन जाता है।

जरा गौर से देखो
ऋतम्भरा का यह
आग्रह है–

मिथ्या घोषित सृष्टि
स्वयं स्रष्टा का
श्रीविग्रह है।

क्षर-अक्षर का द्वन्द्व
सिर्फ शब्दों का सम्मोहन है,
वही विराट् वही वामन
जो मुक्ति वही बन्धन है।

परम तत्त्व का बोध
बिन्दु में गिरे
सिन्धु जैसा है। ●

गीत-५

हर कोलाहल
अन्ततः शान्त होता है।

प्रायः संक्रमणकाल के
निविड़ तमस् में,
जुगनू खुद को
सूरज कहने लगता है।

जिस वक्त राग का बोध
लुप्त होता है।
सरगम का स्वर्ण-सौध
ढहने लगता है।

कविता की रजनीगंधा की
शाखा पे,
लेकिन जिस पल
अग्नि के वृन्त खिलते हैं-

झपकी टूटा करती है
कालपुरुष की,
दिक्पालों के अविचल आसन
हिलते हैं।

मंथन के माथे पे
चौदह चुम्बन रख,
विक्षुब्ध महोदधि
फिर प्रशान्त होता है। ●

गीत-६

गाथा राघव की
विमल व्योमगंगा है।

लक्ष्मण है
बाणोंबिंधा एक वक्षस्थल
जिसकी प्रत्येक श्वास
याज्ञिक समिधा है।

तप के ज्वलन्त
विग्रह का नाम
भरत है,

शत्रुघ्न–
मूक अर्चा की
ज्योतिशिखा है।

है राम
मुस्कराता आचमन
ज़हर का,

सीता–
पीड़ा को
प्राप्त हुई
संज्ञा है। ●

गीत-७

क्रन्दन ही
विनयपत्रिका बन जाता है।

यह ग्रंथिगर्भिता प्रहेलिका जीवन की
सुलझाओ तो कुछ और
उलझ जाती है।

सुख आँखों का पानी बनकर
ढुरता है
वेदना अन्ततः
वीणा बन जाती है।

जिसपे ज़ख्मों के हस्ताक्षर होते हैं
वो दिल ही
मीठी कजरी गा पाता है। ●

गीत-८

पश्चात्तापी दृग्धारा
सुरसरिता है।

दर्पन से
दृष्टि मिलाने को संकल्पित
हर साहस में
नूतन विहान होता है।

जिस पल
अन्तस् की ग्लानि
अश्रु बनती है
उस पल
आत्मा का पर्व-स्नान
होता है।

जो अन्तर्यात्रा का
अविराम पथिक है
वो शब्द
स्वयंभू
ज्योति कलश सविता है। ●

गीत-९

कविता
पीड़ा की पावन पर्णकुटी है।

कर्तव्य
कण्टकित पथ है
दण्डक - वन का,
भावना
कदम्ब-कुंज की
रास-कथा है।

लेकिन
जो व्यथा
अशोक-वाटिका की है,
विरही
बरसाने की भी
वही व्यथा है।

गोकुल-संरक्षण का
व्रत लेने वाली
लेखनी
यशोदानन्दन की
लकुटी है। ●

गीत-१०

वेदना
ब्रह्म की अभिव्यञ्जना-विधा है।

हर युग में
अमृतत्व की आकांक्षा को
व्यक्तित्व
बबूलों पर रखना होता है।

सत् के वाचन हित
संकल्पित जिह्वा को
तेज़ाब
मुस्कराकर चखना होता है

यह कालचक्र
विभ्राट यज्ञ-वेदी है,
हर श्वास
मन्त्रसम्पुष्ट
होम-समिधा है। ●

गीत-११

रश्मियाँ असंख्य सही
है ज्योति अकेली

संसृति के शीशमहल के
हर दर्पण में,
प्रतिबिम्ब एक ही प्रतिमा का
अंकित है।

शंका ही समाधान बनती
विकसित हो,
हर मुक्ति नये बन्धन से
अनुबन्धित है।

परिश्रान्त प्रयत्नों के
निश्चेष्ट पलों में,
ख़ुद अनायास खुलती है
जटिल पहेली। ●

गीत-१२

हर मानस में
नैमिषारण्य रहता है।

विस्तार अमित है
अम्बर की छाती का,
सामर्थ्य
शब्द के पंखों की
परिमित है।

प्रतिपल
परिवर्तन है
प्रश्नावलियों में,
यह सृष्टि
जटिलताओं की
बीजगणित्त है।

जब तक
जलता रहता है
दर्प दिये का,
सूरज
दरवाजे पे
ठिठका रहता है। ●

गीत-१३

हर प्रणत अहम्
उद्गीथ बना करता है।

सबके सिर पर
अपनी - अपनी
गगरी है,
यह विश्व
शून्य में
रचा हुआ
पनघट है।

जीवन यदि
चित्र-वीथिका है
स्वप्नों की,
तो मृत्यु
नींद में
बदल गई
करवट है।

निष्कम्प हुआ करती
जब अन्तस् की लौ,
कोलाहल भी
संगीत बना करता है। ●

गीत-१४

सौन्दर्य दृश्य में नहीं
दृष्टि में ही है।

निष्कल्मष अन्तस् की
अव्याहत श्रद्धा,
वसुधा तल पे
विभु को
उतार सकती है।

दर्शन का उलझा जटाजूट
पल भर में,
भावना
कनखियों से
सँवार सकती है।

पण्डित के प्रतिपादित
सत्यों के ऊपर,
है सत्य
अबोध चित्र की
भावदशा का।

नभ पे जितना
है स्वत्व
मुखर ऊषा का,
उतना ही है
निस्तब्ध निरीह निशा का।

प्रभु कहीं शून्य में नहीं
सृष्टि में ही है। ●

गीत-१५

पीड़ा ही
अन्तः सलिला
सरस्वती है।

भावना स्वयं
है भागीरथी सनातन
अविरल
चिन्तनधारा ही
कालिन्दी है।

कर्तव्य
निनादित शंख
पार्थसारथि का,
कविता
नटवरनागर की
मधुस्यन्दी है।

जिसपे
सब द्वन्द्वों का
संगम होता है,
मानव की वक्षस्थली
वही धरती है। ●

गीत-१६

हर पंथ
अन्ततः
वहीं पहुँच जाता है।

विभु को बिम्बित करने की
सारी चेष्टा–
भाषा को संध्या भाषा कर देती है।
अभिलाषा
उस अरूप के आलिंगन की
हर प्रतिभा को
जिज्ञासा कर देती है।

जो दर्शन के
हिमगिरि का रजत-शिखर है,
है वही
कला का रागारुण रेखांकन।
जो अविचल अनुशासन है
तपश्चरण का,
है वही
अकम्पित श्रद्धा का संकीर्तन।

निर्दोष क्रौञ्च
बिंधता है जब सायक से,
कवि–अन्तस्
स्वयम् अनुष्टुप् बन जाता है। ●

गीत-१७

वेदना
वाग्देवी भी कहलाती है।

ग्रन्थों में जो
दर्शन बनकर बिखरा है,
वो उसी
अनादि अहम् का
स्वगत कथन है।

जो रूप सजाती है
सधवा संस्कृति का,
वो कला बावरी प्रज्ञा की
चितवन है।

जिसपे खुद शूलों ने
अल्पना उकेरी,
उस अन्तस् में ही
सरगम की थाती है। ●

गीत-१८

हर यात्रा
गंगासागर की यात्रा है।

अर्णव के आकर्षण से
कर्षित होती,
हर धार
विकल हिमशिखरों की पाती है।

हर पंथ
पृष्ठ है
दुर्गा-सप्तशती का,
हर संज्ञा में
गायत्री ही गाती है।

सुख लघुमात्राओं से
निर्मित क्षणिका तो
पीड़ा
प्रणवाक्षर की
प्रकृष्ट मात्रा है। ●

गीत-१९

करुणा ही
वत्सल क्षीरोज्ज्वल गंगा है,

भावना –
सुहागिन रागारुण
प्राची है,
अनुताप –

हमारे नभमण्डल का
रवि है।

है कवि खुद में
याज्ञिक वेदी
होता – हवि,
कविता –

आक्षितिजव्याप्त
साकल्य-सुरभि है।

है याज्ञवल्क्य
अभिधान
समाधानों का,

मैत्रेयी –
जिज्ञासा की ही
संज्ञा है। ●

गीत-२०

हर जीवन
कुरुक्षेत्र की रणस्थली है।

है धर्मराज
संशय सात्विक अन्तस् का,
दुर्धर्ष अहम् की संज्ञा
दुर्योधन है।
अर्जुन
ऋजुता है
भक्तिप्रणत प्राणों की,
पाञ्चाली
प्रतिशोधों का
प्रतिवेदन है।

इंगित अदृश्य का
स्वयम्
पार्थसारथि है,
चौसर
मनमोहक माया की
त्रिवली है। ●

गीत-२१

सत् पद्मनाभ
चेतना
स्वयं पद्मा है।

है आदिशेष
आनन्द सहस्रशीर्षा,
निस्सीम शून्य ही
अगम
क्षीरसागर है।

प्रज्ञा है
वैनतेय की
अव्याहत गति,
श्रद्धा ही
नारद की
वीणा का स्वर है।

सुस्मिति बंकिम
केशव की
दुस्तर माया,
संकल्पशक्ति का
विग्रह ही
ब्रह्मा है। ●

गीत-२२

नर
तत्सम नारायण का ही
तद्भव है।

अविकल आत्मा
है मूल धातु
हर घट की,
सुख और दुःख
उपसर्ग तथा
प्रत्यय हैं।

है कर्म
सन्धि - विग्रह की
लीलाएँ भर,
अन्यथा तत्वतः
सभी वर्ण
अव्यय हैं।

आनन्द
महेश्वर का
डिण्डिमवादन है
जिससे
संसृति के सूत्रों का
उद्भव है। ●

गीत-२३

हर जीवन
अभिनव
नाट्य-ग्रन्थ होता है।

है नान्दीपाठ
दुग्धविनिमज्जित बचपन,
यौवन
विष्कम्भक की
आकस्मिकता है।

ग्रन्थियाँ
कथानक की
प्रौढ़ावस्था तो,
मंगलमय भरतवाक्य
वृद्धावस्था है।

जगता है
किसी-किसी की
वाणी में ही,
यूँ हर अन्तस् में
कालिदास
सोता है। ●

गीत-२४

ग्रन्थों की गर्द
छानते उम्र बिताई
निष्कर्ष कहीं भी
अन्तिम एक नहीं है।

मत के महन्त हैं
प्रतिभा के आसन पे,
सत्य का किसी मठ में
अभिषेक नहीं है।

हर तरफ
दुराग्रह की दीवार
खड़ी है,
हर तरफ अन्धविश्वासों के
परचम हैं।

आईनाख़ाने में
सब भूल गये हैं,
आईने भी अक्स भी
हसीन वहम हैं।

नीले नक़ाब को
ओढ़े जो बैठी है,
हम उसका जलवा देख
फ़क़ीर बने हैं—

कंगाल तभी से
आलमगीर बने हैं। ●

गीत-२५

उसके जलवे तो
क़दम-क़दम
बिखरे हैं।

अम्बर ललाट है
उस विराट् सत्ता का,
उसका ही वत्सल अंक
समस्त अवनि है।

नीरव निस्तब्ध
घटाकाशों में गुञ्जित,
उसके पग की आहट ही
अन्तर्ध्वनि है।

है प्रखर धूप
उसकी चढ़ती त्योरी तो,
शीतल ज्योत्स्ना
उसकी स्नेहिल चितवन है।

संस्पर्श मलय के
उसके पावन चुम्बन,
हर क्षण
उसके नूपुर की
रणन-क्वणन है।

ये सारे वाद-विवाद
सगुण-निर्गुण के
प्रतिभा के झगड़े
भाषा के नखरे हैं। ●

गीत-२६

शब्दों के माध्यम से
अशब्द तक
आओ।

युग - युग से
वाद-विवादरूप वासुकि से
यूँ सिद्धान्तों का सिन्धु
मथा जाता है।

जिस घड़ी तर्क की दृष्टि
सूर बनती है
उस घड़ी सत्य का श्याम
नज़र आता है।

ज्वालाएँ
अपने चारों ओर जगाकर
ज्योत्स्ना की
पावन गंगालहरी गाओ। ●

गीत-२७

जीवन के कश्यप की
परिणीताओं में
कद्रू कल्मषता
विनता निश्छलता है।

उद्धत कद्रू की
उच्छृंखल सन्तानें
विष भरी वृत्तियाँ हैं
इस अन्तर्मन की।

है पंगु अरुण
नभसंचारी चिन्तन तो,
दुर्धर्ष गरुड़
संज्ञा कर्मठ यौवन की।

जननी के स्वाभिमान के
रक्षक को ही
श्रीनारायण का
सेवकत्व मिलता है। ●

गीत-२८

दृष्टि बिम्ब की
अपने प्रतिबिम्बों में
उलझ गई है।

प्रश्नावली किसी गार्गी की है
जिन्दगी नहीं है,
अभी वक्ष में अभिलाषाएँ हैं
बन्दगी नहीं है।

चरम शिखर पर ज्ञान
भक्ति का सिंहद्वार
बनता है,
अग्निशुद्ध हो
अहंकार ही
ओंकार बनता है।

जिस दिन
छोड़ दिये प्रयास
गुत्थी
ख़ुद सुलझ गई है। ●

गीत-२९

हर आह
अन्ततः
एक राह बनती है।

हर आँसू में
आहट है मुस्कानों की,
हर कोलाहल में
सन्नाटे का स्वर है।

हर इक नैराश्य
भूमिका है
आशा की,
हर बूँद
महासागर का
हस्ताक्षर है।

जो आतिथेय बन
बढ़ता है स्वागत को,
आपत्ति आप
उसकी पनाह बनती है। ●

गीत-३०

कोऽहम् की यात्रा
सोऽहम् तक
आती है।

ख़ुद को पाने का
सुख लेने की ख़ातिर,
वो ख़ुद को खोने की
लीला करता है।

एकोऽहम् बहुस्याम की
व्याख्याओं में,
अगणित रूपों की
राँगोली रचता है।

प्रश्नाकुलता ही
चरम बिन्दु को छूकर
शामक समाधि में
परिणत हो जाती है। ●

गीत-३१

श्रद्धा का पाथेय
सम्हाले रखना
अन्तर्यात्री !

परिधि सतत संक्षुव्ध
केन्द्र विश्राम-धाम होता है,
साधक झंझावात
सिद्धि का पल
विराम होता है।

सहज स्वीकृता हो
हर बाधा
बन जाती वरदात्री।

अव्याख्येय प्रतीति
अनिर्वचनीय प्रणव जिसका स्वर
व्यक्ति-व्यक्ति में
व्यक्त हो रहा
वो अव्यक्त अगोचर

है आसक्ति मुक्ति की भी
नव बन्धन की
निर्मात्री! ●

गीत-३२

ध्यानस्थ शान्त
प्रार्थनाप्रणत
तन्मय है।

तर्कणा अन्ध प्रश्नों को
प्रश्रय देकर
अन्ततः घोर रौरव तक
पहुँचाती है।

अविचल श्रद्धा
निर्वाक् प्रतीक्षा में ढल
ख़ुद बैकुंठों की
मंज़िल बन जाती है।

ग़ौर से कभी देखो
तो जान सकोगे,
जड़ भी चेतन है
मृण्मय भी
चिन्मय है। ●

गीत-३३

माँ है
तो सारा घर
ठाकुरद्वारा है।

उसके संस्पर्शों में
हर व्रण का मरहम,
वाणी में
गायत्री की लौ
रहती है।

उसकी चितवन से
हर पल
सुधा छलकती,
ममता
मंगल आशीषों में
बहती है।

उसकी सन्निधि
है लहर
क्षीर सागर की,
बैकुंठों ने
ख़ुद को
उसपे वारा है। ●

कुछ लघु कविताएँ

१

तम तुम्हारा
ज्योति के निर्झर
तुम्हारे हैं–

चूमता हूँ मैं
सुखों को भी
दुखों को भी।

जानता हूँ
दोनों हस्ताक्षर
तुम्हारे हैं। ●

२

सभी की ख़ैर माँगो
अपने सर
सबकी बला ले लो–

बचाकर भी स्वयं को
अन्ततः
टूटोगे - बिखरोगे।

लुटाओ
बेवजह ख़ुद को
लुटाने का
मज़ा ले लो। ●

३

विभ्रमों से
उबर के
देखेंगे –

दौड़कर भी
कहीं
नहीं पहुँचे।

अब ज़रा हम
ठहर के
देखेंगे। ●

४

शान्त एकान्त में
महफ़िल में
कोई फ़र्क़ नहीं–

ख्वाहिशें
दिल से हटीं
हाथ से
दरख़ास्त गिरी।

अब हमें
राह में
मंज़िल में
कोई फ़र्क़ नहीं। ●

५

नेस्तनाबूद
ये अना
कर दे –

ख़ैरियत
सबकी चाहूँ
ऐ मौला !

मुझको
दरवेश की
दुआ
कर दे। ●

६

धरा
आकाश से
संयुक्त होगी –

खिलेगी
फूल बनकर
जिस घड़ी
को।

कली
इस बेकली से
मुक्त होगी। ●

७

मेरे बिखराव में भी
इक सलीका है –

ग़ज़ल कहता हूँ मैं
सजदे
नहीं करता।

इबादत का
मेरा अपना
तरीक़ा है। ●

८

नित्य-निर्लिप्त मन
मुक्ति का
द्वार है –

संचरणशील हैं
दुःख - सुख
रात - दिन,

बन्धुओ !
विश्व ये
मण्डलाकार है। ●

९
कृष्ण में
डूब
सर्वात्मना –

गोपियाँ
तीर्थरूपा
बनीं,

वन्दना में
ढली
वासना। ●

१०
क्या किसी पल
विचार
करते हैं ?

वार चाहे
किसी पे
करते हों,

हम
स्वयम् पे
प्रहार करते हैं। ●

११

थक गये
खोज
आगम - निगम –

इस कथा का
कहीं
अथ नहीं,

है कहीं भी
नहीं
इत्यलम्। ●

१२

पाप
ताप
शाप
शमित हो गये–

परिक्रमा की
हमने
पीर की,

प्रभु
ख़ुद ही
परिक्रमित हो गये। ●

१३

बेवजह
इक बवाल
मत करना –

मौन हो
ख़ुद
जवाब पा लोगे,

ज़िन्दगी से
सवाल
मत करना। ●

१४

शून्य में
संचरण
ज़रूरी है–

सत्य के
सौध तक
पहुँचने को,

शब्द का
अतिक्रमण
ज़रूरी है। ●

१५

हर हृदय को
एक धड़कन
बावरी दी है–

पुष्प के
प्रासाद में
परिमित रहे कैसे,

गंध को
प्रभु ने
प्रकृति
यायावरी दी है। ●

१६

प्रार्थना
संवाद से ज़्यादा
स्वगत है–

कल्मषों से
मुक्त करती है
हृदय को,

वेदना
सम्पूज्य
श्रीमद्भागवत है। ●

१७

अस्मिता
खो चली
नज़र मेरी –

रूप में
दस्तख़त दिखे
प्रभु के,

प्रार्थना
हो चली
नज़र मेरी। ●

१८

हम
अहम् के
तिमिर में
बैठे हैं –

पींजरे में हैं
पंचतत्त्वों के,

यातना के
शिविर में
बैठे हैं। ●

१९

प्रश्न
धरती का
आसमां से है –

मैं अगर हूँ
तो फिर
कहाँ तक हूँ,

तू अगर है
तो फिर
कहाँ से है? ●

२०

नित्य
लीलाप्रवृत्त है
कान्हा –

हर कहीं
जिसका केन्द्र है
ऐसा,

इक परिधिहीन
वृत्त है
कान्हा। ●

२१
निष्कलुष
निष्किञ्चनों की
शक्ति है–

तर्क की
निष्पत्ति
मत कहना उसे,

वो
गहनतम भाव की
अभिव्यक्ति है। ●

२२
इक
निर्बन्ध
व्यवस्था है –

जागृति
स्वप्न
सुषुप्ति नहीं,

प्रीति
तुरीयावस्था है। ●

कुछ लोकप्रिय रचनाएँ

श्रीराम

राम व्यक्ति को नहीं वृत्ति को प्राप्त हुई संज्ञा है
राम हमारा चिन्तन दर्शन प्रीति प्रकृति प्रज्ञा है
राम चिरंतन जीवन मूल्यों का स्वर्णाभ शिखर है
राम हमारी संस्कृति का सारस्वत हस्ताक्षर है
राम हमारा कर्म हमारा धर्म हमारी गति है
राम हमारी शक्ति हमारी भक्ति हमारी मति है
बिना राम के आदर्शों का चरमोत्कर्ष कहाँ है?
बिना राम के इस भारत में भारतवर्ष कहाँ है?

• • •

तर्क को दिखे ही नहीं सृष्टि में कहीं भी प्रभु
मुग्ध भाव-दृष्टि ने निहारे लक्ष-लक्ष में।
पत्र पीपलों में वैष्णवत्व के प्रतीक दिखे
समाधिस्थ दीखा शिवतत्त्व वटवृक्ष में।।
कहाँ राजकीय भोग कहाँ चंद जूठे बेर,
दीनबन्धु बैठ गए शबरी के पक्ष में।
राज-महलों के कक्ष-कक्ष में तलाशा गया
राजा रामचन्द्र मिले मारुति के वक्ष में।। •

पं० दीनदयाल उपाध्याय के प्रति

जो लोग समय का नाग नाथते हैं,
वृन्दावन उनके पीछे चलता है,
गोवर्द्धन धारण करनेवालों का,
सारा गोकुल अभिनंदन करता है।

बलिदानों के रथ की लीकें पड़ती
संकल्प सिद्धि की डोली आती है,
माथा चूमने जुझारू बाजे का,
हर आँगन की रांगोली आती है।

चंदनी गीत की रचना के पहले
जो लोग लहू में लपट मिलाते हैं,
आख़िर उनके लोहित हस्ताक्षर ही,
नवयुग को परिचय-पत्र दिलाते हैं।

थोथे सिद्धान्तों को दोहराने से,
कब वसुन्धरा का रूप सँवरता है,
आदर्श आचरण में जब ढलते हैं,
तब कोई 'दीनदयाल' उभरता है।। ●

अपमानित होकर के भी मुस्काना पड़ता है

अपमानित होकर के भी मुस्काना पड़ता है।
इस बस्ती में राजहंस के वंशज को यारो!
काक-वंश की प्रशस्तियों को गाना पड़ता है।

स्याह सियासत लिखती है खाते संघर्षों के
कोनाफटा लिये मिलते हैं खत आदर्शों के।
सब कुछ जान बूझकर चुप रह जाना पड़ता है।।
इस बस्ती में विवश बृहस्पति की मृगछाला को–
इन्द्रासन से तालमेल बिठलाना पड़ता है।

जुगनू सूरज को प्रकाश का अर्थ बताते हैं
यहाँ दिग्भ्रमित पंथ-प्रदर्शक माने जाते हैं।
हर जुलूस में जैकारा बुलवाना पड़ता है।।
इस बस्ती में ऊँचाई मिलती तो है लेकिन–
खुद अपनी ही नज़रों में गिर जाना पड़ता है। ●

कुछ मुक्तक

जला के राख किया गाँव कुल सियासत ने
किसी तरह ये ग़ज़ल का मकान बाक़ी है
तुम्हारे हाथ के पत्थर बरस के चुक भी गये
लहू लुहान परिन्दे में जान बाकी है।

●

या बदचलन हवाओं का रुख मोड़ देंगे हम
या खुद को वाणी-पुत्र कहना छोड़ देंगे हम।
जिस दिन भी हिचकिचाएंगे लिखने में हक़ीक़त
क़ाग़ज को फाड़ देंगे कलम तोड़ देंगे हम।।

●

क्या करेंगे हम सुधा के स्वर्ण घट का,
प्यास को दो बूँद गंगाजल बहुत है।
बादशाहों को मुबारक हों दुशाले
जोगियों के जिस्म पर वल्कल बहुत है।।

●

आँधियाँ लाओ लहू में ज्वार को पैदा करो
कंठ में क्रंदन नहीं हुंकार को पैदा करो।
फिर कुरुक्षेत्री समर की भूमिका सजने लगी
पार्थ, फिर गांडीव की टंकार को पैदा करो।।

हमसे लोग ख़फ़ा रहते हैं

अपनी आदत है चुप रहते
या बहुत खरा कहते हैं
हमसे लोग ख़फ़ा रहते हैं।

आँसू नहीं छलकने देंगे ऐसी क़सम उठा रखी है
होंठ नहीं दाबे दाँतों से हमने चीख दबा रखी है
माथे पर पत्थर सहते हैं, छाती पर खंजर सहते हैं
पर कहते पूनम पूनम को, मावस को मावस कहते हैं
हमसे लोग ख़फ़ा रहते हैं।

हमने तो ख़ुद्दार ज़िन्दगी के मानी इतने ही माने
जितनी गहरी चोट, अधर पर उठती ही गहरी मुस्कानें
फ़ाक़े वाले दिन को पावन एकादशी समझ रहते हैं
पर मुखिया की ड्योढ़ी पे जाकर आदाब नहीं कहते हैं
हमसे लोग ख़फ़ा रहते हैं।

हम स्वर हैं झोपड़पट्टी के, रंगमहल के फाग नहीं हैं
आत्मकथा बागी लपटों की, गंधर्वों के राग नहीं हैं
हम चराग़ हैं, रात-रात भर दुनिया की खातिर जलते हैं
अपनी तैराकी उलटी है, धारा में मुर्दे बहते हैं
हमसे लोग ख़फ़ा रहते हैं। ●

दो छन्द

झुका हुआ भाल हाथ आरती का थाल,
शब्द बना द्वारपाल कीर्तिगान हुई ज़िन्दगी।
त्रस्त पोर-पोर जख़्म हो चले किशोर,
पीर सिन्धु की हिलोर मूर्तिमान हुई ज़िन्दगी।
व्यर्थ है गुहार सारा गाँव बटमार,
विधवा के रूप-ज्वार सी जवान हुई जिन्दगी।
ध्वस्त मूल्यमान वक्त व्याध की कमान,
वाण से बिंधी उड़ान बेज़ुबान हुई ज़िन्दगी।।

• • •

तक्षकों के नाम हो गया समस्त ग्राम
रहा एक रामनाम ही हमारे अधिकार में।
किसी से न कहो ज़ुल्म सहो चुप रहो,
अपराध है ज़ुबान खोलना भी दरबार में।
गीत के फ़क़ीर छोड़ साधना-कुटीर,
लिये हाथ में ज़मीर खड़े हो गये बज़ार में।
रश्मियों की गैल बनी शाह की रखैल
अन्धकार गया फैल मर्सिया घुला मल्हार में।।

दोहे

शब्दों में कैसे बँधे सीता का संत्रास,
रावण ने दी वाटिका राघव ने वनवास।

पोर-पोर शर से बिंधे धीर भीष्म के वक्ष,
तन से बाँधे व्याल हम चन्दन के समकक्ष।

सहते-सहते वक़्त के वृश्चिक के विषदंश,
शनैः शनैः हम हो गये संस्कृत से अपभ्रंश।

आँगन-आँगन है यहाँ नागफनी की पौध,
लिखे कहाँ पर बैठकर 'प्रियप्रवास' 'हरिऔध'।

लहूलुहान मिली हमें लफ़्ज़ों की तहसील,
हर सीने में ज़ख़्म थे हर तलवे में कील।

गणितज्ञों के गाँव से मिलते ज़ख़्म सहेज,
हमने बाँचे उम्रभर दिल के दस्तावेज़।

देख क्रौञ्च-वध वाग्मिता बैठी कब चुपचाप,
आदि अनुष्टुप का रहा अक्षर-अक्षर-शाप।

युग-युग से देते रहे हैं दृग-दृग को दीठ,
दुःख शंकराचार्य हैं दिल हैं प्रज्ञा-पीठ।

चिन्दी-चिन्दी हो चले गीतों के रूमाल,
नख से शिख तक वक़्त है नागफनी की डाल।

तेरा श्रीविग्रह रहे सम्मुख आठों याम,
दृष्टि सूर की आँज दे इन आँखों में श्याम। ●

ग़ज़ल-१

जो किसी का बुरा नहीं होता
शख़्स ऐसा भला नहीं होता।

दोस्तों से शिकायतें होंगी
दुश्मनों से गिला नहीं होता।

हर परिन्दा स्वयं बनाता है,
अर्श पे रास्ता नहीं होता।

इश्क के कायदे नहीं होते,
दर्द का फलसफा नहीं होता।

फितरतन गलतियाँ करेगा वो
आदमी देवता नहीं होता।

खत लिखोगे हमें कहाँ आखिर
जोगियों का पता नहीं होता। ●

ग़ज़ल-२

अग्नि के गर्भ में पला होगा,
शब्द जो श्लोक में ढला होगा।

दृग मिले कालिदास के उसको,
अश्रु उसका शकुन्तला होगा।।

दर्प ही दर्प हो गया है वो,
दर्पनों ने उसे छला होगा।

भाल कर्पूर गौर हो बेशक,
गीत का कण्ठ साँवला होगा।।

• • •

धूल-धक्कड़ हो धुआँ हो, धुंध हो बेशक यहाँ।
मेरा अपना गाँव फिर भी मेरा अपना गाँव है।
कल्पवृक्षों के घने साये मुबारक हों तुम्हें,
मेरे सर पर मेरी माँ की ओढ़नी की छाँव है।। ●

ग़ज़ल-३

अथक अविराम अक्षर-साधना है
हमारी ज़िन्दगी नीराजना है

सियासत सर्जना है शूलवन की
कला विग्रहवती शुभकामना है

अधर पर काँपती वो मुस्कराहट
प्रणय के ग्रंथ की प्रस्तावना है

उसे उपलब्धि में परिणत करेंगे
हमारे पास इक संभावना है

विचारें सूक्ष्मता से तो लगेगा
अभीप्सा मुक्ति की भी वासना है

कभी थी चाँदनी की रूपगाथा
ग़ज़ल अब अग्नि की आराधना है। ●

ग़ज़ल-४

क़ायदों में न बाँधना उसको
प्रीति का व्याकरण नहीं होता

स्वर्णमृग ने लुभा लिया वर्ना
जानकी का हरण नहीं होता

वो सदाशिव सहज दिगम्बर है
सत्य पर आवरण नहीं होता

हर कथा संस्मरण नहीं बनती
हर कथन उद्धरण नहीं होता

कश्तियों के चुनाव में अक्सर
उम्र भर संतरण नहीं होता

वक्ष जब तक बिंधे नहीं अम्बर
गीत का अंकुरण नहीं होता। ●

ग़ज़ल-५

मोहब्बत का ऋक् मंत्र अपनी जगह है,
सियासत का षड्यंत्र अपनी जगह है।

हैं अपनी जगह क़हक़हे कुर्सियों के,
सिसकता प्रजातंत्र अपनी जगह है।

प्रखर बुद्धि ने सारी दुनिया बदल दी,
मगर दिल का संयंत्र अपनी जगह है।

अभी तक है अम्बर का स्वर ज्योतिवाही,
अभी तक ये श्रीयन्त्र अपनी जगह है। ●

ग़ज़ल-६

आरसी जब भी शरीफों को दिखाई है
अक्षरों के वंशजों ने चोट खाई है।

चंद आँसू चंद आहें और कुछ ग़ज़लें,
ये हमारी ज़िन्दगी भर की कमाई है।

एक मुद्दत से तिमिर की सख़्त मुट्ठी में
रोशनी की कंज कलिका की कलाई है।

संग्रहालय में रखो इस शख़्स को यारो,
आज भी कम्बख़्त के स्वर में सचाई है।

ये गली है दृष्टिहीनों की यहाँ क्यों कर,
आपने दूकान सुरमे की लगाई है।

लेखनी होगी तुम्हारी दृष्टि में मित्रो,
हाथ में गंगाजली हमने उठाई है। ●

ग़ज़ल-७

कि अगले ही कदम पे खाइयाँ हैं
बहुत अभिशप्त ये ऊँचाइयाँ हैं।

यहाँ से है शुरू सीमा नगर की,
यहाँ से हमसफ़र तनहाइयाँ हैं।

हुईं किलकारियाँ जबसे सयानी,
बहुत सहमी हुई अँगनाइयाँ हैं।

हमारी हर बिवाई एक साखी,
बदन की झुर्रियाँ चौपाइयाँ हैं।

नियत में आपकी विषपान होगा,
ज़ुबा पे आपकी सच्चाइयाँ हैं। ●

नाम	:	शिव ओम अम्बर
पिताश्री	:	पंडित गौरीदत्त पाण्डेय
माताश्री	:	श्रीमती हरिप्रिया पाण्डेय
जन्मतिथि	:	२३ सितम्बर १९५२ (आश्विन शुक्ल चतुर्थी संवत् २००९)
शिक्षा	:	एम. ए. (हिन्दी), बी. एड्., पीएच. डी.
शोध-विषय	:	हिन्दी ग़ज़ल की वैचारिक भंगिमा, संवेदना एवं शिल्प
प्रकाशित पुस्तकें	:	वैयक्तिक ग़ज़ल-संग्रह—आराधना अग्नि की, शिव ओम अम्बर की चुनी हुई ग़ज़लें (सं : नित्यानंद तुषार) सम्पादित ग़ज़ल संग्रह—काँटों का सफर, आस्था की रेखाएँ
समवेत संकलन	:	संभावनाओं के क्षितिज, हिन्दी ग़ज़ल के समकालीन स्तम्भ, सबरंग, वन्दे मातरम्, हिन्दी की चर्चित ग़ज़लें, इसी दरमियां, नेह के सरसिज, आस्था के पड़ाव, नई सदी के प्रतिनिधि ग़ज़लकार, बर्फ़ के अंगारे, ग़ज़ल से ग़ज़ल तक, प्रतिनिधि हिन्दी ग़ज़लें, ग़ज़लें ही ग़ज़लें, नया जमाना नई ग़ज़लें, खूबसूरत ग़ज़लें, इन्द्रधनुषी ग़ज़लें, ग़ज़लें रंगारंग, हिन्दी ग़ज़ल-यात्रा, दोहा-दशक, रंगारंग दोहे, सप्तपदी आदि।
वृत्ति	:	म्युनिसिपल इन्टर कॉलेज, फतेहगढ़ में हिन्दी प्रवक्ता।
विशेष	:	"पाञ्चजन्य" में एक अरसे तक साहित्यिक स्तम्भ "गवाक्ष" का नियमित लेखन।
सम्पर्क-सूत्र	:	४/१०, नुनहाई, फ़र्रुखाबाद-२०९६२५ (उ. प्र.)
दूरभाष	:	(०५६९२) २२०६७

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय • कोलकाता